THE TIMES OF INDIA

Date:01-10-21

Agri Self-Goal

R&D underpins India's food security. That's why GM needs decisive intervention

TOI Editorials

Prime Minister Narendra Modi on Tuesday launched 35 new crop varieties developed to possess traits that make them nutrient-rich or resilient to climate change. They have been developed by the Indian Council of Agricultural Research (ICAR), an umbrella body that oversees more than 100 research institutions. R&D geared to boost productivity in Indian agriculture is a key element of the overall farm policy and receives significant public funding.

From around the early stage of the Green Revolution, ICAR has developed 5,334 improved field crop varieties, an important contributor to the development of food security. Since then technology hasn't been static. The most important development was the advent of genetically modified (GM) crops in mid-1990s. India was an early adopter of GM crops when the regulatory body, Genetic Engineering Appraisal Committee (GEAC), cleared the cultivation of Bt cotton in 2002. However, subsequently GM crop technology has run into two obstacles. Opposition to the technology itself, which is often rooted in fear mongering. And the diffidence of governments, both GoI and states. But this hasn't either kept GM out of the food market in India or prevented the spread of other GM crops.

India is the world's largest importer of soybean oil, about 3.3 million tonnes a year. As GM dominates soybean cultivation, that's where the oil imports come from. Beleaguered farmers are also no longer willing to wait for regulatory clearance and there are media reports of illegal cultivation of Bt brinjal in Haryana. This is highly troublesome as GM crops need regulatory supervision. Another victim of GM hesitancy is Indian science. ICAR and other institutions have funded research in GM and delivered. Applications for Bt brinjal and Bt mustard, developed by Delhi University, have been stuck in sarkari files for years. GM can massively benefit India. GoI should act.

THE HINDU

Date:01-10-21

Failing on food

Recent data on child malnutrition underscore the value of good school meals

Editorial

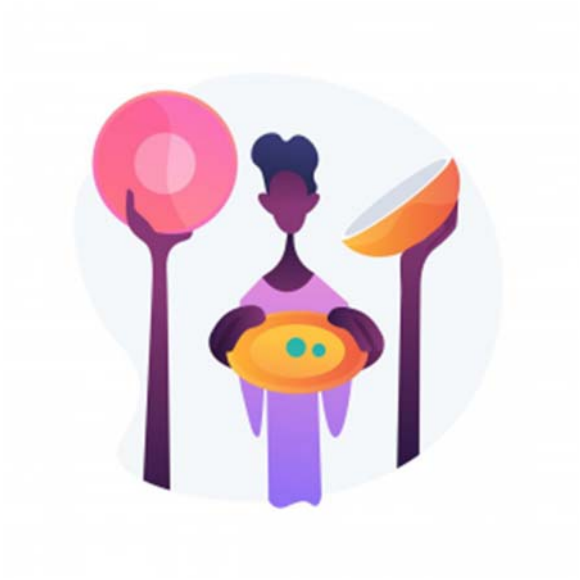

The approval of the PM POSHAN scheme by the Cabinet Committee on Economic Affairs until 2025-26 comes at a critical time when real income declines and the economic impact of the COVID-19 pandemic have affected the ability of families to ensure good nutrition. The findings in Phase I of the NFHS-5 for 22 States and Union Territories in December 2020 were shocking: childhood stunting rose in 13 States, there was high prevalence of anaemia among children and women, and wasting was a serious concern in 12 States. The slippage over the previous survey period exposes the worsening scourge of malnutrition, threatening to deprive millions of children of a fully productive adult life. It will take a serious effort to address this hidden crisis, backed by strong budgetary commitment. The centrally supported hot meal programme in Government and Government-aided schools, covering 11.8 crore children, will be supplemented with nutritional elements in identified aspirational districts and areas with high anaemia. The scheme, which is proposed to be extended to pre-primary children, provides for social audit, creation of school nutritional gardens to source fresh produce, involvement of farmer-producer organisations as providers, and lays emphasis on local food traditions. While these are positive features, momentum towards eradicating malnutrition hinges crucially on annual budgetary outlays and proof of POSHAN's working will lie in measurable outcomes.

Support for the PM POSHAN, which the Government says has been approved over the five-year period at ₹1,30,794 crore, including ₹31,733 crore from States and UTs, must remain elastic. While some child growth metrics such as stunting require a longer window to measure, problems such as anaemia and low weight lend themselves to speedy amelioration. The Government must demonstrate that Saksham Anganwadi-Mission POSHAN 2.0, which amalgamates the POSHAN Abhiyan and schemes covering anganwadis, crèches and adolescent girls, is fiscally stronger than its erstwhile component parts. There must be a meaningful increase in the current Budget estimate over the combined past outlay for the subsumed individual schemes. On nutritional planning, the renewed plan should introduce a greater diversity of diets that compensates for micronutrient and protein deficiency. Strong supplementation of nutrition at school, in the community, and at childcare centres is critical at a time when criticism of food inflation has met with a tone-deaf response, and pandemic-induced income declines have depressed essential consumption. The lower offtake of foodgrains for the noon meal scheme during the pandemic over the previous year and patchy food distribution mechanisms in many States should set alarm bells ringing. The future of a generation of Indians is at stake.

दैनिक जागरण

Date:01-10-21

क्वाड के साथ आकस भी आवश्यक

हर्ष वी पंत (लेखक नई दिल्ली स्थित आब्जर्वर रिसर्च फाउंडेशन में रणनीतिक अध्ययन कार्यक्रम के निदेशक हैं)

पिछले कुछ दिन हिंद-प्रशांत क्षेत्र को लेकर खासे हलचल भरे बीते हैं। क्वाड और आकस जैसे संगठन इस हलचल के केंद्र में रहे। चूंकि हिंद-प्रशांत क्षेत्र समान विचार वाले लोकतांत्रिक देशों की सहभागिता और सक्रियता वाला ऐसा क्षेत्र है, जिनका उद्देश्य निरंतर निरंकुश होते चीन पर कुछ अंकुश लगाना है तो ऐसे देशों के इन दोनों संगठनों से यही अपेक्षाएं भी लगी हुई हैं। इस बीच अचानक से अस्तित्व में आए आकस ने अवश्य कुछ चौंकाने का काम किया है। आस्ट्रेलिया, ब्रिटेन और अमेरिका के इस नए संगठन को लेकर आलोचना की जा रही है कि जब अमेरिका और आस्ट्रेलिया जैसे देश पहले से ही क्वाड के सदस्य हैं, तो फिर इस नए संगठन की क्या आवश्यकता थी? यदि ब्रिटेन को ही साथ लाना था तो क्वाड का विस्तार किया जा सकता था। जो लोग इन बिंदुओं पर आकस की आलोचना और इससे क्वाड के राह भटकने की बात कर रहे हैं वे सही नहीं हैं।

सबसे पहली बात तो यही कि हिंद-प्रशांत क्षेत्र में चीन की बढ़ती दबंगई और उसकी काट के लिए जारी अमेरिकी प्रयासों के बीच इतनी गुंजाइश अवश्य है कि उसमें एक से अधिक संगठन सक्रिय रह सकें। ऐसे में आकस और क्वाड के समांतर रूप से संचालन में कोई समस्या नहीं होनी चाहिए। हमें इन संगठनों की मूल प्रकृति को समझना होगा। जहां क्वाड एक व्यापक विस्तार और साझेदारी वाला संगठन है, वहीं आकस विशुद्ध रूप से सामरिक साझेदारी का मंच। जिन्हें लगता है कि अमेरिका ने बहुत जल्दबाजी में आकस के गठन की दिशा में कदम बढ़ाए, उन्हें अमेरिकी तत्परता की वजह भी समझनी चाहिए।

दरअसल, अफगानिस्तान से अपने सैनिकों की वापसी के बाद अमेरिका के बारे में यही धारणा बनती दिख रही थी कि वह अपने अन्य साझेदारों को भी अधर में छोड़ सकता है। ऐसे में इस धारणा को तोड़ने और अपने साथियों में भरोसा जगाने के लिए ही अमेरिका ने आकस की संकल्पना को जल्दी से साकार किया। इसीलिए परमाणु शक्तिसंपन्न राष्ट्र न होने बावजूद आस्ट्रेलिया को अमेरिका से परमाणु पनडुब्बियां मिलने जा रही हैं। इसके लिए अमेरिका ने फ्रांस जैसे पुराने साथी के कुपित होने की परवाह भी नहीं की। दरअसल कोरोना काल से ही आस्ट्रेलिया की चीन से अदावत चल रही है। इस स्थिति में उसे अमेरिका से किसी ठोस समर्थन की आवश्यकता थी। अमेरिका ने भी उसे निराश न कर यही संदेश दिया है कि वह अपने साथियों को मझधार में नहीं छोड़ेगा। वहीं आस्ट्रेलिया ने चीन को स्पष्ट संदेश दे दिया है कि वह भले ही कई मामलों में उस पर निर्भर है, लेकिन उसकी आक्रामकता को कतई बर्दाश्त नहीं करेगा। आस्ट्रेलिया ने इसमें कोई मध्यमार्गी विकल्प न चुनकर एक स्पष्ट रुख अख्तियार किया है। उधर ब्रेक्जिट के बाद से ब्रिटेन भी हिंद-प्रशांत क्षेत्र में नए सिरे से सक्रियता बढ़ाने की तैयारी में था। वैसे भी ये तीनों देश पुराने सहयोगी और साझेदार हैं। ऐसे में आकस पुराने और स्वाभाविक साथियों की सहभागिता का एक नया मंच ही है।

किसी भी क्रिया की प्रतिक्रिया निश्चित होती है। आकस के मामले में भी यही हुआ। इस साझेदारी और आस्ट्रेलिया के साथ रक्षा करार से बाहर होने पर फ्रांस ने बहुत तल्ख तेवर दिखाए। केवल फ्रांस ही नहीं, बल्कि यूरोपीय संघ को भी यह नागवार गुजरा। भारत में भी एक तबके ने सवाल उठाए कि अमेरिका जो तकनीक भारत को देने के लिए तैयार नहीं, वह आस्ट्रेलिया को देने जा रहा है। यहां तक बातें हुईं कि आकस के अस्तित्व से क्वाड हाशिये पर चला जाएगा। ऐसी आपत्तियां वास्तव में अनुचित हैं। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि आस्ट्रेलिया और जापान जैसे देशों के साथ अमेरिका का पहले से ही सुरक्षा को लेकर समझौता है। इससे अमेरिका द्वारा आस्ट्रेलिया को उपरोक्त तकनीक हस्तांतरण में कोई बाधा नहीं। जबकि भारत का अमेरिका से ऐसा कोई करार नहीं है। वस्तुत: आकस पर आपत्ति जताने के बजाय उसके प्रभाव पर ध्यान केंद्रित करना चाहिए। यह देखना चाहिए कि उसके गठन से चीन कैसे तिलमिलाया है? बीजिंग को अहसास हुआ है कि आस्ट्रेलिया जैसी क्षेत्रीय शक्ति भी उसके खिलाफ निर्णायक फैसला कर बिगुल बजाने की क्षमता रखती है। भारत के नजरिये से देखें तो चीन पर दबाव बनाने वाली ऐसी कोई भी पहल उसके लिए उपयोगी ही कही जाएगी।

जिन लोगों को यह चिंता सता रही है कि आकस के कारण क्वाड किनारे लगा दिया जाएगा उन्हें यह समझना चाहिए कि आकस जैसी सामरिक साझेदारी के उलट क्वाड व्यापक सहयोग वाली विस्तारित अवधारणा है। बीते दिनों क्वाड राष्ट्रप्रमुखों की बैठक में बनी सहमति के बिंदुओं से भी यह स्पष्ट दिखता है। उसमें अवसंरचना विकास, जलवायु परिवर्तन से लेकर निवेश जैसे बिंदुओं पर चर्चा की गई। क्वाड वैश्विक महत्व के अहम बिंदुओं पर समग्रता में अपनी भूमिका निभाने के लिए प्रतिबद्ध दिखता है। जैसे यूरोपीय संघ के साथ वह कनेक्टिविटी के मसले पर सहयोग बढ़ाना चाहता है। दक्षिण कोरिया जैसे देश के साथ सेमीकंडक्टर उत्पादन में आगे बढ़ने की संभावनाएं तलाश रहा है तो आसियान देशों को साथ लाकर व्यापारिक मोर्चे को मजबूत बनाना चाहता है। ऐसे में यदि क्वाड में सामरिक साडोदारी का तत्व जोड़ेंगे तो तमाम संभावित साझेदार देशों के लिए इस संगठन के साथ औपचारिक रूप से जुड़ना कुछ असहज हो जाएगा। यही कारण है कि क्वाड चीन की अपनी तरह से घेराबंदी कर रहा है तो आकस उस पर अपने हिसाब से शिकंजा कसेगा। ये दोनों संगठन भले ही अलग हों, लेकिन उनका मूल मकसद एक ही है और वह है विश्व को विस्तारवादी, अड़ियल और तानाशाह चीन की दबंगई से बचाना और वैश्विक ढांचे को संतुलित करना।

क्वाड के सदस्य भारत जैसे देश की आकस को लेकर कोई असहजता नहीं होनी चाहिए। वास्तव में चीन पर किसी भी प्रकार से बनाया जा रहा दबाब भारत के लिए अच्छा ही है। इस बीच भारत को चाहिए कि वह इन नई साझेदारियों से फ्रांस जैसे जो पुराने सहयोगी छिटक रहे हैं, उन्हें मनाने और साधने में मध्यस्थता करने के प्रयास करे ताकि चीन के खिलाफ न केवल मोर्चा और मजबूत किया जा सके, बल्कि उसमें किसी भी तरह के बिखराव की आशंका भी समाप्त हो जाएं।

जनसत्ता

Date:01-10-21

बुजुर्ग आबादी का गहराता संकट

योगेश कुमार गोयल

बड़ों के आदर की परंपरा भारतीय संस्कृति में हमेशा से रही है। लेकिन आज दुनिया के अन्य देशों सहित हमारे देश में भी वृद्धजनों पर बढ़ते अत्याचारों की खबरें समाज के लिए गंभीर चिंता का विषय बन गई हैं। ज्यादातर परिवारों में वृद्ध जिस तरह की उपेक्षा झेलने को मजबूर हैं, उससे ज्यादा और पीड़ादायक क्या हो सकता है! समृद्ध परिवार होने के बावजूद घर के बुजुर्ग वृद्धाश्रमों में जीवनयापन करने को विवश हैं। बहुत से मामलों में बच्चे ही उन्हें बोझ मान कर वृद्धाश्रमों में छोड़ आते देते हैं। हालांकि यह उम्र का ऐसा पड़ाव होता है, जब उन्हें परिजनों के अपनेपन, प्यार और सम्मान की सर्वाधिक जरूरत होती है। एक व्यक्ति जिस घर-परिवार को बनाने में अपनी पूरी जिंदगी खपा देता है, वृद्धावस्था में जब उसी घर में उसे अवांछित वस्तु के रूप में देखा जाने लगता है तो लगता है जैसे उस घर में रहने वालों की इंसानियत और उनके संस्कार मर चुके हैं।

विश्वभर में ऐसे हालात को देखते हुए ही वृद्धजनों के लिए कुछ कल्याणकारी कदम उठाने की जरूरत महसूस हुई थी। इसीलिए वर्ष 1982 में विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) ने 'वृद्धावस्था को सुखी बनाइए' जैसा नारा देते हुए 'सबके लिए स्वास्थ्य' अभियान का शुरू किया था। वृद्धों के साथ होने वाले अन्याय, उपेक्षा और दुर्व्यवहार पर लगाम लगाने और वृद्धजनों के प्रति उदारता व उनकी देखभाल की जिम्मेदारी के अलावा उनकी समस्याओं के प्रति लोगों में जागरूकता फैलाने के उद्देश्य से संयुक्त राष्ट्र ने 14 दिसंबर 1990 को निर्णय लिया कि हर साल एक अक्तूबर का दिन दुनियाभर में 'अंतरराष्ट्रीय वृद्धजन दिवस' के रूप में मनाया जाएगा।संयुक्त राष्ट्र की इस पहल के बाद एक अक्तूबर 1991 को पहली बार यह दिवस मनाया गया, जिसे 'अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस' के नाम से भी जाना जाता है। बुजुर्गों के प्रति वैसे तो सभी के हृदय में हर पल, हर दिन सम्मान का भाव होना चाहिए, लेकिन दिल में छिपे इस सम्मान को व्यक्त करने के लिए औपचारिक तौर पर यह दिन निश्चित किया गया। 1991 में अंतरराष्ट्रीय वृद्धजन दिवस की शुरूआत के बाद वर्ष 1999 को पहली बार 'बुजुर्ग वर्ष' के रूप में भी मनाया गया था। इस वर्ष अंतरराष्ट्रीय वृद्ध दिवस का केंद्रीय विषय 'सभी उम्र के लिए डिजिटल इक्विटी' रखा गया है, जो वृद्धों की डिजिटल दुनिया में पहुंच और सार्थक भागीदारी की आवश्यकता की पुष्टि करता है।

भारतीय समाज में सयुंक्त परिवार को हमेशा से अहमियत दी गई है। लेकिन आज के बदलते परिवेश में छोटे और एकल परिवार की चाहत में संयुक्त परिवार की अवधारणा खत्म होती जा रही है। यही कारण है कि लोग अपने बुजुर्गों से दूर होते जा रहे हैं और नई पीढ़ी दादा-दादी, नाना-नानी के प्यार से वंचित होती जा रही है। एकल परिवार के बढ़ते चलन के कारण ही परिवारों में बुजुर्गों की उपेक्षा होने लगी है। न चाहते हुए भी बुजुर्ग अकेले रहने को मजबूर हैं। इसका एक गंभीर परिणाम यह देखने को मिला है कि बुजुर्गों के प्रति अपराध भी तेजी से बढ़े हैं। शहरों-महानगरों में आए दिन बुजुर्गों को निशाना बनाए जाने की खबरें दहला देती हैं।दूसरा गंभीर परिणाम यह कि बच्चों को बड़े-बुजुर्गों का सानिध्य नहीं मिलने के

कारण उनके जीवन पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है। एक सर्वे के अनुसार दादा-दादी या नाना-नानी के साथ रहने वाले बच्चों का विकास अकेले रहने वाले बच्चों की तुलना में कहीं ज्यादा अच्छा और मजबूत होता है और ऐसे बच्चों में आत्मविश्वास भी अधिक देखने को मिला है। आज पति-पत्नी दोनों ही कामकाजी हैं, ऐसे में बच्चे घर में अकेले रहते हैं और कम उम्र में ही उनमें अवसाद जैसी समस्याएं पनपने लगती हैं।

पिछले साल छियानवे देशों में कराए गए एक सर्वे के बाद 'ग्लोबल एज वॉच इंडेक्स' जारी किया गया था। उस सूचकांक के मुताबिक करीब चवालीस फीसद बुजुर्गों का मानना था कि उनके साथ सार्वजनिक स्थानों पर दुर्व्यवहार किया जाता है, जबकि तिरपन फीसद बुजुर्गों का कहना था कि समाज उनके साथ भेदभाव करता है। इस रिपोर्ट के अनुसार बुजुर्गों के लिए दुनिया में सबसे बेहतर देश के रूप में स्विटजरलैंड का नाम आता है। छियानवे देशों के इस सूचकांक में भारत को इकहत्तरवें पायदान पर रखा गया। जाहिर है, भारत में बुजुर्गों की स्थिति दयनीय है। 'वर्ल्ड पॉपुलेशन प्रॉस्पेक्ट्स 2019' में बताया गया है कि दुनियाभर में जहां वर्ष 2019 में प्रत्येक ग्यारह में से एक व्यक्ति की उम्र पैंसठ वर्ष से ज्यादा है, वहीं वर्ष 2050 तक विश्व में हर छह व्यक्तियों में से एक की आयु पैंसठ साल से अधिक होगी, यानी बुजुर्गों की आबादी काफी ज्यादा होगी। ऐसे में उनके बेहतर स्वास्थ्य और उनकी समस्याओं के समाधान को लेकर समाज को बेहद संजीदा होने की दरकार है।

वरिष्ठ नागरिकों के कल्याण को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने वर्ष 1999 में एक राष्ट्रीय नीति बनाई थी। इससे पहले वर्ष 2007 में माता-पिता और वरिष्ठ नागरिक भरण-पोषण विधेयक भी संसद में पारित किया गया, जिसमें माता-पिता के भरण-पोषण, वृद्धाश्रमों की स्थापना, चिकित्सा सुविधा की व्यवस्था और वरिष्ठ नागरिकों के जीवन और संपत्ति की सुरक्षा का प्रावधान था। लेकिन इसके बावजूद देशभर में वृद्धाश्रमों में बढ़ती संख्या इस तथ्य को इंगित करती है कि भारतीय समाज में वृद्धों को उपेक्षित किया जा रहा है।भारतीय संस्कृति में जन्म देने वाली मां और पालन करने वाले पिता का स्थान ईश्वर से भी ऊंचा माना गया है। सदियों से यह मान्यता रही है कि जिन घरों में बुजुर्गों का सम्मान होता है, वे तीर्थस्थल से कम नहीं होते। ऐसे में वृद्धों के उत्पीड़न और उपेक्षा की घटनाएं बढ़ना गंभीर संकट का संकेत है। दरअसल वृद्धावस्था हर व्यक्ति के जीवन का एक पड़ाव है। यदि आज हम अपने बुजुर्गों की उपेक्षा करते हैं तो आने वाले समय में हमें भी अपने बच्चों से कोई अच्छी उम्मीदें नहीं रखनी चाहिए। वृद्धावस्था में बुजुर्ग शारीरिक रूप से शिथिल भी हो जाएं तो परिजनों का कर्त्तव्य है कि पूरे सम्मान के साथ उनका ध्यान रखा जाए। वृद्धावस्था में शारीरिक स्थिति में बदलव आना सामान्य बात है। बुजुर्गों में उच्च रक्तचाप, मधुमेह, याददाश्त कमजोर पड़ने, भूलने जैसी समस्याएं आमतौर पर देखी जाती हैं। लेकिन दवाओं के साथ-साथ परिजनों के अच्छे व्यवहार की मदद से ऐसी समस्याओं को कम करने में मदद मिल सकती है।

आर्थिक समस्या से जूझते वृद्धों के लिए लगभग सभी पश्चिमी देशों में पर्याप्त पेंशन की व्यवस्था है। भारत में भी वृद्धावस्था पेंशन की सुविधा है, लेकिन उनके सामने स्वास्थ्य समस्याओं के अलावा अकेलेपन की जो समस्या है, उसका इलाज नहीं है। यह अकेलापन वृद्धजनों को भीतर ही भीतर सालता रहता है। ऐसे में चिंताजनक स्थिति यही होती है कि बीमारी के समय में भी सांत्वना देने वाला उनका कोई अपना उनके पास नहीं होता। हालांकि आज कुछ ऐसी संस्थाएं हैं जो एकाकी जीवन व्यतीत कर रहे वृद्धों के लिए निस्वार्थ भाव से काम कर रही हैं लेकिन ये संस्थाएं भी अपनों की महसूस होती कमी की भरपाई तो नहीं कर सकती। बहरहाल, वृद्धजनों को अपने परिवार में भरपूर मान-सम्मान मिले, इसके लिए

सामाजिक जागरूकता जैसी पहल की सख्त दरकार है ताकि वृद्धों के प्रति परिजनों की सोच सकारात्मक होने से बुजुर्गों के लिए वृद्धाश्रम जैसे स्थानों की समाज में आवश्यकता ही महसूस नहीं हो।

Live हिन्दुस्तान .com

Date:01-10-21

राज्यों को मिले किसानों की जिम्मेदारी

यामिनी अय्यर, (प्रेसिडेंट, सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च)

देश के ग्रामीण परिवारों के पास उपलब्ध भूमि और पशुधन के अलावा किसान परिवारों की स्थिति का आकलन करने वाला एसएएस, 2019 (इसे हाल में जारी किया गया है) भारत में खेती-किसानी के विविध व क्षेत्रोन्मुख चरित्र को प्रमुखता से उजागर करता है। यह बताता है कि कृषि आय और कृषि व गैर-कृषि गतिविधियों के अंतर्संबंध राज्य-दर-राज्य अलग-अलग हैं। लिहाजा, 'किसानों की आमदनी दोगुनी करने' या बाजार में प्रतिस्पद्र्धा के जरिये पैदावार बढ़ाने के रास्ते राज्यों की हकीकत समझने के बाद तय किए जाने चाहिए। यही वह मूल वजह है कि आखिर क्यों कृषि राज्य का विषय है और नए कृषि कानूनों में बुनियादी रूप से क्या गलत है।

आंकड़ों के मुताबिक, साल 2018-19 (जून-जुलाई) में एक कृषि परिवार की औसत मासिक आमदनी 10,829 रुपये (पेंशन और प्रेषित-धन सहित) थी। इसमें कृषि आय (फसल उत्पादन और मवेशी पालन) की हिस्सेदारी परिवार की औसत आय में 50 फीसदी से भी कम थी। मगर इस अखिल भारतीय आंकड़े में जिसकी जानकारी नहीं मिलती है और जिसकी ओर 'सेंटर फॉर पॉलिसी रिसर्च' इशारा करता है, वह है राज्यवार विविधता। मसलन, केरल (22 फीसदी), पश्चिम बंगाल (28 फीसदी) और ओडिशा (35 फीसदी) जैसे राज्यों में कुल आय में कृषि की हिस्सेदारी एक तिहाई है, जबकि पंजाब (61 फीसदी) और मध्य प्रदेश (66 फीसदी) में यह 60 फीसदी से अधिक है।

आय के स्रोतों पर करीब से नजर डालने पर उलझन और बढ़ जाती है। बिहार में औसत मासिक कृषि आय 4,478 रुपये थी, जबकि झारखंड में 1,929 रुपये। हालांकि, मजदूरी से औसत कमाई लगभग समान थी। बिहार में कुल आय में कृषि का हिस्सा 57 फीसदी है, जबकि झारखंड में यह बमुश्किल 37 प्रतिशत। झारखंड में औसतन कृषि परिवार की कुल आमदनी बिहार की तुलना में बहुत कम है। यहां एक चौंकाने वाला आंकड़ा भी है। दरअसल, केरल में कृषि से होने वाली औसतन मासिक आमदनी 4,688 रुपये है, जो बिहार से बहुत ज्यादा नहीं है। कर्नाटक के किसान महाराष्ट्र के किसानों की तुलना में करीब 26 प्रतिशत अधिक कमाते हैं।

इतना ही नहीं, जोत के आकार पर कृषि आय निर्भर करती है। देश भर की बात करें, तो जमीन का आकार जब एक हेक्टेयर से अधिक हो जाता है, तब कुल आमदनी में कृषि आय की हिस्सेदारी 50 फीसदी की सीमा तक पहुंच पाती है। मगर इसमें भी राज्यवार भिन्नताएं हैं। मसलन, केरल में लगभग 87 फीसदी किसान परिवारों के पास .01 से एक हेक्टेयर

के बीच जमीन थी, और वहां कुल मासिक आय में कृषि का योगदान सिर्फ 19 प्रतिशत है। दिलचस्प बात यह है कि केरल में बड़ी जोत (दो-चार हेक्टेयर) वाले परिवार भी अपनी आय का केवल 36 फीसदी हिस्सा खेती से कमा पाते हैं। तमिलनाडु में यह आंकड़ा 47 प्रतिशत, बिहार में 78 प्रतिशत और मध्य प्रदेश में 80 फीसदी है। बिहार में 80 प्रतिशत परिवारों के पास .01 से एक हेक्टेयर के बीच भूमि है। यहां की कुल आय में कृषि कर्म का योगदान 45 फीसदी है। मध्य प्रदेश में बहुत कम 52 फीसदी परिवारों के पास एक हेक्टेयर से कम जमीन है और उनकी आमदनी में खेती की हिस्सेदारी 32 प्रतिशत है। मगर वहां औसतन कृषक परिवार खेती से अपनी कुल आय का 66 प्रतिशत हिस्सा कमाता है।

वैसे, कृषि उत्पाद बाजार समितियों (एपीएमसी) और बाजारों के उलझे सवालों पर एसएएस डाटा एक सच्चाई की पुष्टि करता है, जिसकी तरफ पिछले सर्वेक्षण और जमीनी अध्ययन, दोनों ने इशारा किया है। पूरे देश में, एकाधिकार होने की बातों से कहीं दूर, बाजार समिति की मंडियां बिक्री के लिहाज से महत्वहीन हैं और सच्चाई यही है कि ज्यादातर किसान अपनी कृषि उपज को राज्यों की मंडियों के बाहर स्थानीय बाजार में बेचते हैं। हालांकि, इसमें भी क्षेत्रवार और फसल के हिसाब से अलग-अलग परिस्थितियां हैं, जिससे राज्यों में खरीद की सरकारी प्रणाली भी अछूती नहीं है।

जाहिर है, इन आंकड़ों पर महज सरसरी निगाह डालने से समझ आ जाता है कि नीतिगत मोर्चे पर कितनी जटिल परिस्थिति है। कृषि उत्पादकता, बाजार तक पहुंच, गैर-कृषि जुड़ाव, अन्य रोजगार के अवसर और सामाजिक सुरक्षा, सभी पर संजीदगी से काम करने की जरूरत है। मगर कृषि और गैर-कृषि, दोनों कार्यों से होने वाली ग्रामीण आय को बढ़ाने के लिए किस नीति को कितनी प्राथमिकता मिलनी चाहिए और इसकी रणनीति क्या होनी चाहिए, यह राज्यों के हिसाब से अलग-अलग तय करना श्रेयस्कर होगा।

संसद ने जब कृषि कानूनों को पारित किया था, तभी हमने कहा था कि इन कानूनों में गड़बड़ी है, क्योंकि इनमें सुधार का ऐसा नजरिया अपनाया गया है, जो एक अत्यंत विविध और भिन्नता समेटे क्षेत्र में केंद्रीकृत नीति की वकालत करता है। राज्यों में कृषि कार्यों, बाजारों और राज्य संस्थानों के आपसी संबंध इतने अलग-अलग होते हैं कि बिहार में औसत कृषि आय केरल जैसी ही काफी ज्यादा है, लेकिन इसके कारण बिल्कुल अलग हैं।

इस दिशा में काम करने के लिए हमें राष्ट्रीय बहसों में दो महत्वपूर्ण बदलाव करने पड़ेंगे। सबसे पहले यह मानना होगा कि राज्यों को हम नजरंदाज नहीं कर सकते। हमें राज्यों की विफलता की चर्चा करने के बजाय राज्य सरकारों की जवाबदेही तय करनी होगी। और दूसरा बदलाव यह करना होगा कि हमें राज्य सरकार के स्तर पर राज्य की क्षमता बढ़ाने के प्रयास तेज करने पड़ेंगे। इसका अर्थ है, नियोजन क्षमता का निर्माण, एक साझा तंत्र द्वारा राज्यों को आपस में जोड़ना (यह भूमिका नीति आयोग बहुत ही प्रभावी ढंग से निभा सकता है) और स्थानीय निकायों में निवेश। क्षेत्रीय विशिष्टता के आधार पर कृषि और गैर-कृषि कार्यों में संबंध बनाने और स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं को बेहतर बनाने के लिए बेहतर समन्वय और विकेंद्रीकरण, दोनों की दरकार है।

लिहाजा, हम कितने भी केंद्रीय कानून बना लें, लेकिन इन महत्वपूर्ण मसलों का वे कतई समाधान नहीं कर सकते। अब हमें नीतिगत बहसों का रुख बदला होगा और पूछना होगा कि बड़े सुधारों में निवेश करने और कृषि की महत्वपूर्ण चुनौतियों से पार पाने के लिए राज्यों की क्या-क्या आवश्यकताएं होंगी?